ओ३म्

पाणिनि-मुनि-प्रणीता

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृत-व्याख्या-सहिता

प्रकाशक :-
राम लाल कपूर ट्रस्ट

श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट ग्रन्थमाला सं०–४२

॥ ओ३म् ॥

वर्णोच्चारण-शिक्षा

पाणिनि-मुनि-प्रणीता

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृत-व्याख्या-सहिता

[पं० युधिष्ठिर मीमांसक जन्मशती संस्करण]

प्रकाशक:-

रामलाल कपूर ट्रस्ट

ग्रा० रेवली, पो० ई० सी० मुरथल

जिला- सोनीपत–३९

दशम वार ४००० | भाद्रपद २०६६ वि० अगस्त सन् २००९ | मूल्य– ४.००

प्रकाशकीय

सम्प्रति पाणिनीय शिक्षा के नाम से दो ग्रन्थ– श्लोकात्मक एवं सूत्रात्मक– उपलब्ध होते हैं। श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा के दो पाठ प्रसिद्ध हैं– पहला लघुपाठ जिसमें पैंतीस श्लोक हैं और याजुष पाठ कहा जाता है; दूसरा बृहत् पाठ जिसमें साठ श्लोक हैं और आर्च पाठ कहा जाता है। सूत्रात्मक पाणिनीय शिक्षा के भी लघु और बृहत् पाठ उपलब्ध होते हैं। लघुपाठ की खोज और उद्धार का श्रेय ऋषि दयानन्द सरस्वती को है। बृहत् पाठ स्वर्गीय पं० युधिष्ठिर मीमांसक के प्रयास से १९५३ में प्रकाश में आया।

ऋषि दयानन्द सरस्वती को पाणिनीय-शिक्षा-सूत्रों का एक जीर्ण हस्तलेख विक्रमी संवत् १९३६ के मध्य में प्रयाग के एक ब्राह्मण के घर से उपलब्ध हुआ। उन्होंने इस ग्रन्थ का सम्पादन किया और महाभाष्य आदि के वचनों के साथ समन्वित करके आर्य-भाषा में अनुवाद करके 'वर्णोच्चारण-शिक्षा' के नाम से वैदिक यन्त्रालय से विक्रमी संवत् १९३६ के अन्त में प्रकाशित कराया। ऋषि दयानन्द को उपलब्ध हस्तलेख खण्डित और कुछ अव्यवस्थित था। वैदिक यन्त्रालय का भी वह आरम्भिक काल था। इसलिए ग्रन्थ में अनेक अशुद्धियाँ रह गईं। अष्टम प्रकरण के २६-२७ सूत्र भी त्रुटित रह गये। कालान्तर में म० म० पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने 'शिक्षा-सूत्राणि' नामक एक लघुग्रन्थ प्रकाशित किया, जिसमें आपिशलि, पाणिनि और चन्द्रगोमी के शिक्षा-सूत्रों का संग्रह है। शिक्षा-सूत्राणि ग्रन्थ में पाणिनीय शिक्षा-सूत्रों के लघु और बृहत् दोनों पाठ संगृहीत किये गये हैं।

रामलाल कपूर ट्रस्ट ने ऋषि दयानन्द सरस्वती कृत 'वर्णोच्चारण-शिक्षा' ग्रन्थ कई वर्ष पूर्व प्रकाशित किया था। उसका आधार वैदिक यन्त्रालय अजमेर से वि० सं० १९८५ में प्रकाशित ११वाँ संस्करण था। प्रथम संस्करण की अशुद्धियाँ ११वें संस्करण में भी ज्यों की त्यों थीं। अनावश्यक विवाद के परिहारार्थ ट्रस्ट ने भी ११वें संस्करण का अनुकरण किया था। यह संस्करण पूर्ववत् छापा गया है।

१ मार्च २००५ विजयपाल विद्यावारिधि

* ओ३म् *

भूमिका

मुझको इस पुस्तक का प्रकाशन करना आवश्यक विदित इसलिए हुआ है कि आजकल देवनागरी वर्णों के उच्चारण में बहुधा जो-जो गड़बड़ हुई है, उस-उस को छोड़कर यथायोग्य वर्णों का उच्चारण मनुष्य करें। जैसे 'ज्ञ' इसमें ज्+ञ्+आ ये तीन अक्षर मिले हैं। इनका उच्चारण भी जकार, ञकार और आकार ही का होना चाहिये। किन्तु ऐसा न हो कि जैसे दाक्षिणात्य लोग, अर्थात् द्राविड़, तैलङ्ग, कारणाटक और महाराष्ट्र द्नान; गुजराती लोग ग्यान; और पञ्च गौड़ न्यान ऐसा अशुद्ध उच्चारण अन्ध-परम्परा से वेदादिशास्त्रों के पाठ में भी करते हैं। ऐसे ही पञ्च गौड़ प्राय: ष के स्थान में स का, और कोई-कोई ख का, और य के स्थान में ज का उच्चारण करते हैं। वैसे ही बङ्गाली लोग ष और स के स्थान में भी श का उच्चारण किया करते हैं। यह अन्ध-परम्परा नष्ट होकर शुद्धोच्चारण की परम्परा होनी योग्य है।

और जैसे पाणिनिकृत शिक्षा में तिरसठ अक्षर वर्णमाला में माने हैं, उनकी गणना पूरी करने के लिये कई लोगों ने (कुं खुं गुं घुं) इन चार को यम मानकर तिरसठ अक्षर पूरे किये हैं। भला यहाँ विचारना चाहिये कि जब पूर्वोक्त यम हैं तो (चुं छुं जुं झुं टुं ठुं) इत्यादि यम क्यों न हों? और जो कोई कहे कि (पलिक्क्नी, चख्ख्नतु:, जग्ग्मि:, जघ्घ्नु:) इत्यादि में (क् ख् ग् घ्) ये वर्ण यम कहाते, और प्रातिशाख्य में भी प्रसिद्ध हैं, तो क्या इस बात को वे नहीं जानते कि वे वर्णान्तर कभी नहीं हो सकते,

क्योंकि वे तो कवर्ग में पढ़े ही हैं।

तथा अपाणिनीय शिक्षा को पाणिनिकृत मानके पाठ किया करते, और उसको वेदाङ्ग में गिनते हैं। क्या वे इतना भी नहीं जानते कि– **'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा'**, अर्थ– 'मैं जैसा पाणिनि मुनि की शिक्षा का मत है, वैसी शिक्षा करूँगा।' इससे स्पष्ट विदित होता है कि यह ग्रन्थ पाणिनि मुनि का बनाया नहीं, किन्तु किसी दूसरे ने बनाया है। ऐसे-ऐसे भ्रमों की निवृत्ति के लिये बड़े परिश्रम से **'पाणिनिमुनिकृत शिक्षा'** का पुस्तक प्राप्त कर, उन सूत्रों की सुगम भाषा में व्याख्या करके वर्णोच्चारण विद्या की शुद्ध प्रसिद्धि करता हूँ कि मनुष्यों को थोड़े ही परिश्रम से वर्णोच्चारणविद्या की प्राप्ति शीघ्र हो जावे।

इस ग्रन्थ में **जो-जो बड़े अक्षरों में पाठ है, वह-वह पाणिनिमुनि कृत**, और **मध्यम अक्षरों में अष्टाध्यायी और महाभाष्य का पाठ**, और **जो-जो छोटे अक्षरों में छपा है, वह मेरा बनाया है।** ऐसा सर्वत्र समझना चाहिये।।

।इति भूमिका समाप्ता।।

ह० दयानन्द सरस्वती (काशी)

✵ ओ३म् ब्रह्मात्मने नमः✵

अथ वर्णोच्चारण-शिक्षा

(प्रश्न)– वर्ण वा अक्षर किनको कहते हैं ?

१– **(उत्तर)**– **अक्षरं नक्षरं विद्यादश्नोतेर्वा सरोऽक्षरम्।**
वर्णं वाहुः पूर्वसूत्रे किमर्थमुपदिश्यते॥

महाभाष्य अ॰ १। पा॰ १। आ॰ ५॥

मनुष्य (अक्षरं नक्षरम्) जो सर्वत्र व्याप्त, जिनका कभी नाश नहीं होता, (वर्णं वाहुः पूर्वसूत्रे) अथवा जिनको पूर्वसूत्र[1] में वर्ण और अक्षर कहते हैं, (विद्यात्) उनको प्रयत्न से जानें।

(प्रश्न)– किसलिये इनका उपदेश किया जाता है ?

२– **(उत्तर)**– **वर्णज्ञानं वाग्विषयो यत्र च ब्रह्म वर्त्तते।**
तदर्थमिष्टबुद्ध्यर्थं लघ्वर्थं चोपदिश्यते॥

सोऽयमक्षरसमाम्नायो वाक्समाम्नायः पुष्पितः फलितश्चन्द्रतारकवत् प्रतिमण्डितो वेदितव्यो ब्रह्मराशिः सर्ववेदपुण्यफलावाप्तिश्चास्य ज्ञाने भवति॥ महाभाष्य अ॰ १। पा॰ १। आ॰ २॥

मनुष्य (यत्र) जिसमें (ब्रह्म च) शब्दब्रह्म वेद और परब्रह्म को प्राप्त हों, (वाग्विषयः) और वे जो वाणी का विषय, अर्थात् (वर्णज्ञानम्) वर्णों का यथार्थ विज्ञान है, उसको जान सकें, (तदर्थम्) इस इष्ट बुद्धि अर्थात् वर्णों का यथार्थ अभीष्ट ज्ञान और स्वल्प, प्रयत्न से महालाभ को

१. अष्टाध्यायी के अ इ उ ण् आदि सूत्रों के व्याख्यान में यह कारिका है। व्याकरण की अपेक्षा में शिक्षा पूर्वसूत्र, और उसमें भी **'तमक्षरं॰'** इसकी अपेक्षा में पूर्व **'आकाशवायु॰'** इस सूत्र में वर्ण का व्याख्यान है।

प्राप्त होने के लिये अक्षरों का अभ्यास उच्चारण की रीति प्रसिद्ध की जाती है। सो यह अक्षरों का अच्छे प्रकार कथन 'वाक्समाम्नाय' है। अर्थात् अपने शब्दरूपी पुष्पफलों से युक्त, चन्द्र और ताराओं के समान सुशोभित आकाश में स्थित (राशिः) शब्दों का समुदाय ब्रह्मराशि जानने योग्य है। और इसके यथार्थज्ञान में सम्पूर्ण वेदों का फल प्राप्त होता है। इसमें वर्णों के ठीक-ठीक उच्चारण से सुनने में प्रीति और भ्रम की निवृत्ति होती है। इसलिये यह वर्णोच्चारण-विद्या अवश्य जाननी चाहिये।

(प्रश्न)– वर्णों का रूप कैसे प्रकट होता है ?

३– (उत्तर)– आकाशवायुप्रभवः शरीरात्समुच्चरन् वक्त्रमुपैति नादः। स्थानान्तरेषु प्रविभज्यमानो वर्णत्वमागच्छति यः स शब्दः॥१॥

आकाश और वायु के संयोग से उत्पन्न होने वाला, नाभि के नीचे से ऊपर उठता हुआ, जो मुख को प्राप्त होता है, उसको 'नाद' कहते हैं। वह कण्ठ आदि स्थानों में विभाग को प्राप्त हुआ वर्णभाव को प्राप्त होता है, उसको 'शब्द' कहते हैं।

४– आत्मा बुद्ध्या समेत्यर्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्।
मारुतस्तूरसि चरन्मन्दं जनयति स्वरम्॥

जीवात्मा बुद्धि से अर्थों की संगति करके कहने की इच्छा से मन को युक्त करता, विद्युत्रूप जाठराग्नि को ताड़ता, वह वायु को प्रेरणा करता, और वायु उरःस्थान में विचरता हुआ मन्द स्वर को उत्पन्न करता है।

(प्रश्न) शब्द का स्वरूप कैसा है ? किस फल को प्राप्त करता, और किन पुष्पों से सेवित है ?

५– (उत्तर)– तमक्षरं ब्रह्म परं पवित्रं गुहाशयं सम्यगुशन्ति विप्राः।
स श्रेयसा चाभ्युदयेन चैव सम्यक् प्रयुक्तः पुरुषं युनक्ति॥२॥

(विप्राः) विद्वान् लोग (तम्) उस आकाश-वायु-प्रतिपादित (अक्षरम्) नाशरहित, (गुहाशयम्) विद्यासुशिक्षासहित बुद्धि में स्थित, (परम्) अत्युत्तम (पवित्रम्) शुद्ध (ब्रह्म) शब्दराशि की (सम्यक्) अच्छे प्रकार (उशन्ति) प्राप्ति की कामना करते हैं। और (स एव) वही (सम्यक् प्रयुक्तः) अच्छे प्रकार प्रयोग किया हुआ शब्द (अभ्युदयेन) शरीर, आत्मा, मन (च) और स्वसम्बन्धियों के लिये इस संसार के सब सुख, तथा (श्रेयसा) विद्यादि शुभ गुणों के योग (च) और मुक्ति-सुख से (पुरुषम्) मनुष्य को (युनक्ति) युक्त कर देता है। इसलिये इस वर्णोच्चारण की श्रेष्ठ शिक्षा से शब्द के विज्ञान में सब लोग प्रयत्न करें।

शब्द का लक्षण

६– श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्राह्यः प्रयोगेणाभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः॥ महाभाष्य अ० १। पा० १। सू० २। आ० २॥

यह 'अ इ उ ण्' सूत्र की व्याख्या में लिखा है कि (श्रोत्रोपलब्धिः) जिसका कान इन्द्रिय से ज्ञान, (बुद्धिनिर्ग्राह्यः) और बुद्धि से निरन्तर ग्रहण, (प्रयोगेणाभिज्वलितः) जो उच्चारण से प्रकाशित होता, तथा (आकाशदेशः) जिसके निवास का स्थान आकाश है, (शब्दः) वह 'शब्द' कहाता है।

(प्रश्न)– वर्णमाला में कितने वर्ण हैं ?

७– (उत्तर)– त्रिषष्टिः ॥३॥

तिरसठ हैं। और वे अकारादि वर्णों में विभक्त हैं। जैसे–

अकारादि स्वरों का स्वरूप

ह्रस्व	दीर्घ	प्लुत
अ	आ	अ३
इ	ई	इ३
उ	ऊ	उ३
ऋ	ॠ	ऋ३
ऌ	०	ऌ३
०	ए	ए३
०	ऐ	ऐ३
०	ओ	ओ३
०	औ	औ३

कवर्ग– क ख ग घ ङ।
चवर्ग– च छ ज झ ञ।
टवर्ग– ट ठ ड ढ ण।
तवर्ग– त थ द ध न।
पवर्ग– प फ ब भ म।
अन्तस्थ– य र ल व।
ऊष्म– श ष स ह।

अयोगवाहरूप

: विसर्जनीय	ँ ह्रस्व
ᳲ जिह्वामूलीय	ँ दीर्घ
ᳲ उपध्मानीय	ँ अनुनासिक चिह्न, और ळ यह अक्षर
ं अनुस्वार	इनको चार यम भी कहते हैं

उक्त वर्णों में अवर्ग के वर्ण अकार आदि 'स्वर', और कवर्ग आदि वर्गों के वर्ण 'व्यञ्जन' कहाते हैं। स्वर वर्ण शब्दों में शुद्धस्वरूप से भी रहते, और व्यञ्जनों के साथ में मात्रारूप में भी आते हैं। मात्रारूप स्वरों में जब व्यञ्जन मिलाये जाते हैं, तब प्रत्येक व्यञ्जन बारह प्रकार से कहा जाता है। उसका स्वरूप और संयोगचक्र (जिससे कि व्यञ्जन का परस्पर सम्बन्ध विदित होता है) आगे लिखते हैं–

बारह अक्षरों का स्वरूप

क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
।	ा	ि	ी	ु	ू	े	ै	ो	ौ	ं	:
क	का	कि	की	कु	कू	के	कै	को	कौ	कं	कः

जैसे यह ककार का स्वरों के साथ मेल करके स्वरूप दिखलाया है, वैसे ही खकारादि वर्णों का स्वरों के साथ मेल और स्वरूप का विज्ञान बुद्धि से पढ़ने-पढ़ाने वालों को लिख-लिखाकर ठीक-ठीक करना चाहिये।

संयोगचक्रम्

क् य् अ– क्य	ज् ञ् अ– ज्ञ	क् ऋ– कृ	क् व् अ– क्व
क् च् अ– क्च	ह् य् अ– ह्य	क् ॠ– कॄ	क् ष् अ– क्ष
क् र् अ– क्र	ह् व् अ– ह्व	क् ऌ– क्ऌ	श् य् अ श्य

स्वरों का लक्षण

८– स्वयं राजन्त इति स्वराः॥

महाभाष्य। अ॰ १। पा॰ २। सू॰ २९। आ॰ १॥

जिनके उच्चारण में दूसरे वर्णों के सहाय की अपेक्षा न हो, वे 'स्वर' कहाते हैं।

स्वरों की संज्ञा

९– ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः॥ अ॰ १। पा॰ २। सू॰ २७॥

स्वरों की ह्रस्व दीर्घ और प्लुत भेद से तीन संज्ञा हैं। इनके उच्चारण समय का लक्षण यह है कि जितने समय में अङ्गुष्ठ के मूल की नाड़ी की गति एक वार होती है उतने समय में ह्रस्व, उससे दूने काल में दीर्घ, और उसके तिगुने काल में प्लुत का उच्चारण करना चाहिये। और स्वरों के उदात्तादि भी गुण हैं–

१०– उच्चैरुदात्तः॥ १।२।२९॥

ऊर्ध्वध्वनि से उदात्त। और–

११– नीचैरनुदात्तः॥ १।२।३०॥

नीचे स्वर से अनुदात्त बोला जाता है।

१२– समाहारः स्वरितः॥ १।२।३१॥

उदात्त और अनुदात्त स्वरों को मिलाकर बोलना 'स्वरित' कहाता है।

१३– ह्रस्वं लघु॥ १।४।१०॥

ह्रस्व स्वर की 'लघु' संज्ञा। और–

१४– संयोगे गुरु॥ १।४।११॥

जो दो वा अधिक व्यञ्जनों का संयोग परे हो, तो पूर्व ह्रस्व अच् की 'गुरु' संज्ञा होती है। जैसे (विप्रः) यहाँ वकार में इकार की गुरु संज्ञा है, क्योंकि इसके परे पकार और रेफ का संयोग है।

१५– दीर्घं च॥ १।४।१२॥

और दीर्घ की भी 'गुरु' संज्ञा है।

१६– हलोऽनन्तराः संयोगः॥ १।१।७॥

अनन्तर अर्थात् अचों का जो व्यवधान उससे रहित हलों की 'संयोग' संज्ञा है।

व्यञ्जन का लक्षण

१७– अन्वग्भवति व्यञ्जनमिति॥

महाभाष्य। अ० १। पा० २। सू० २९। आ० १॥

जिनका उच्चारण विना स्वर के नहीं हो सकता, वे 'व्यञ्जन' कहाते हैं।

उच्चारण करने वालों के गुण

१८– माधुर्य्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः।
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः॥

(माधुर्यम्) वर्णों के उच्चारण में मधुरता, (अक्षरव्यक्तिः) भिन्न-भिन्न अक्षर, (पदच्छेदः) पृथक्-पृथक् पद, (तु) और (सुस्वरः) सुन्दर

ध्वनि, (धैर्यम्) धीरता, (च) और (लयसमर्थम्) विराम तथा सार्थकता, और जैसा ह्रस्व दीर्घ प्लुत उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वर, स्पर्श आदि आभ्यन्तर और विवारादि बाह्य प्रयत्न से अपने-अपने स्थानों में वर्णों का उच्चारण करना, तथा सत्यभाषणादि भी वर्णों के उच्चारण करने वालों के गुण हैं।

स्वरों के उच्चारण में दोष

१९– ग्रस्तं निरस्तमविलम्बितं निर्हतमंबूकृतं ध्मातमथो विकम्पितम्।
सन्दष्टमेणीकृतमर्द्धकं द्रुतं विकीर्णमेताः स्वरदोषभावनाः॥

महाभाष्य। अ० १। पा० १। आ० १॥

(ग्रस्तम्) जैसे किसी वस्तु को मुख से पकड़कर बोलना, (निरस्तम्) जैसे किसी वस्तु को मुख से ग्रहण करके फैंक देना, (अविलम्बितम्) जिसका उच्चारण पृथक्-पृथक् करना चाहिये उसको वर्णान्तर में मिलाके बोलना, (निर्हतम्) जैसे किसी को धक्का देना, (अम्बूकृतम्) जैसे मुख में जल भरके बोलना, (ध्मातम्) जैसे रुई को धुनना, वा लोहार की भाठी के समान उच्चारण करना, (विकम्पितम्) जैसे कम्प करके बोलना, (सन्दष्टम्) जैसे किसी वस्तु को दाँतों से काटते हुये बोलना, (एणीकृतम्) जैसे हरिण कूदके चलते हैं, वैसे ऊपर-नीचे ध्वनि से बोलना, (अर्द्धकम्) जितने समय में जिस वर्ण का उच्चारण करना चाहिये उसके आधे समय में बोलना, (द्रुतम्) त्वरा से बोलना, (विकीर्णम्) जैसे कोई वस्तु बिखर जाये वैसा उच्चारण करना, ये सब दोष स्वरों के उच्चारण करनेहारों के हैं।

२०– अतोऽन्ये व्यञ्जनदोषाः। शश षष इति मा भूत्।
पलाशः पलाष इति मा भूत्। मञ्चको मञ्जक इति मा भूत्॥

महाभाष्य। अ० १। पा० १। आ० १॥

व्यञ्जनों के उच्चारण में भी दोषों को छोड़कर बोलना चाहिये।

जैसे- (शश:) इन तालव्य शकारों के उच्चारण में (षष इति मा भूत्) मूर्द्धन्य षकारों का उच्चारण करना, (पलाश: पलाष:) यहाँ भी पूर्ववत् जानना। (मञ्चक:) कोई इस च के स्थान में (मञ्जक:) ज का उच्चारण करे, इत्यादि व्यञ्जनों के उच्चारण करनेहारों के दोष कहाते हैं। इसलिये जिस-जिस अक्षर का जो-जो स्थान प्रयत्न और उच्चारण का क्रम है, वैसा ही उस-उस का उच्चारण करना योग्य है।

(प्रश्न)- इस ग्रन्थ में कितने प्रकरण हैं ?

२१- **(उत्तर)- स्थानमिदं करणमिदं प्रयत्न एषो द्विधाऽनिल:।**
स्थानं पीडयति वृत्तिकार: प्रक्रम एषोऽथ नाभितलात्॥४॥

स्थान, करण, आभ्यन्तर प्रयत्न, बाह्य प्रयत्न, स्थान में वायु का ताड़न, वृत्तिकार, प्रक्रम और नाभि के अधोभाग से वायु का उत्थान, ये आठ (८) प्रकरण क्रम से इस ग्रन्थ में हैं।

अथ प्रथमं प्रकरणम्

२२- **अकुहविसर्जनीया: कण्ठ्या:॥५॥**

अ आ अ३, कु अर्थात् क ख ग घ ङ, ह और : विसर्जनीय इन वर्णों का कण्ठ स्थान है। अर्थात् जो जिह्वा का मूल कण्ठ का अग्रभाग काकल्क के नीचे देश है, उस कण्ठ स्थान से इनका शुद्ध उच्चारण होता है।

२३- **हविसर्जनीयावुरस्यावेकेषाम्॥६॥**

कई एक आचार्यों का ऐसा मत है कि हकार और : विसर्जनीय का उच्चारण उर:स्थान अर्थात् कण्ठ के नीचे और स्तनों के ऊपर स्थान से करना चाहिये।

२४- **जिह्वामूलीयो जिह्व्य:॥७॥**

और वे ऐसा भी मानते हैं कि जिसलिये जीभ के मूल से ≍ इस

जिह्वामूलीय का उच्चारण होता है, इसलिये यह जिह्वामूलीय कहाता है।

२५- कवर्ग ऋवर्णश्च जिह्व्यः॥८॥

तथा उनका यह भी मत है कि जिस कारण कवर्ग और ऋवर्ण अर्थात् ह्रस्व दीर्घ और प्लुत का जिह्वामूल भी स्थान है, इससे इनको जिह्वा की जड़ में से बोलना अशुद्ध नहीं।

२६- सर्वमुखस्थानमवर्णमित्येके॥९॥

जिसलिए अवर्ण का उच्चारण सब मुख में करना शुद्ध है, इस लिये कोई आचार्य अवर्ण को सर्वमुखस्थान वाला कहते हैं।

२७- कण्ठ्यान् आस्यमात्रानित्येके॥१०॥

तथा कोई एक आचार्यों का मत ऐसा भी है कि जिन-जिन वर्णों का कण्ठ स्थान है, उन सबका उच्चारण मुखमात्र में होना भी अशुद्ध नहीं।

२८- इचुयशास्तालव्याः॥११॥

जो इ ई इ३, चु अर्थात् च छ ज झ ञ, य और श हैं, इनका तालु स्थान अर्थात् दाँतों के ऊपर से उच्चारण करना चाहिये। जैसे च के उच्चारण में जिस स्थान में जैसी जीभ की क्रिया करनी पड़ती है, वैसे शकार का उच्चारण करना योग्य है।

२९- ऋटुरषा मूर्धन्याः॥१२॥

ऋ ॠ ऋ३, (टु=) ट ठ ड ढ ण, र और ष का उच्चारण मूर्द्धा स्थान अर्थात् तालु के ऊपर से करना चाहिये। जैसी क्रिया ट के उच्चारण में की जाती है, वैसे ही ष के उच्चारण में करनी उचित है।

३०- रेफो दन्तमूलीय एकेषाम्॥१३॥

कई एक आचार्यों का मत ऐसा है कि र का उच्चारण दाँत के मूल से भी करना योग्य है।

३१- दन्तमूलस्तु तवर्गः॥१४॥

वैसे ही कई आचार्यों के मत में तवर्ग अर्थात् अर्थात् त थ द ध और न का उच्चारण दन्तमूल से भी करना अच्छा है।

३२– लृतुलसा दन्त्याः॥१५॥

लृ लृ३, तु अर्थात् त थ द ध न, ल और स इन वर्णों का दन्त-स्थान अर्थात् दाँतों में जिह्वा लगाके उच्चारण करना है।

३३– वकारो दन्त्यौष्ठ्यः॥१६॥

व का उच्चारण दाँत और ओष्ठ से होना चाहिये।

३४– सृक्किणीस्थानमेकेषाम्॥१७॥

कई एक आचार्यों के मत में वकार को सृक्किणी स्थान से बोलना चाहिये। जो दाँत और ओष्ठ के बीच में स्थान है, उसे 'सृक्किणी' कहते हैं।

३५– उपूपध्मानीया ओष्ठ्याः॥१८॥

उ ऊ उ३, (पु=) प फ ब भ म और ⌓ इस उपध्मानीय को ओष्ठ स्थान से उच्चारण करना शुद्ध है।

३६– अनुस्वारयमा नासिक्याः॥१९॥

ळ को छोड़के [ꣳ ꣴ] ँ और अनुस्वार को नासिका से बोलना शुद्ध है।

३७– कण्ठ्यनासिक्यमनुस्वारमेके॥२०॥

कण्ठ और नासिका स्थान वाले ङकार को कोई आचार्य अनुस्वार के समान केवल नासिकास्थानी कहते हैं।

३८– यमाश्च नासिक्यजिह्वामूलीया एकेषाम्॥२१॥

कई एक आचार्य्यों के मत से यम अर्थात् ꣴ ꣳ ँ ये भी नासिका और जिह्वामूल स्थान वाले हैं।

३९– एदैतौ कण्ठ्यतालव्यौ॥२२॥

ए ऐ कण्ठ और तालु से बोलने योग्य हैं।

४०– ओदौतौ कण्ठ्यौष्ठ्यौ॥२३॥

ओ औ को कण्ठ और ओष्ठ से बोलना शुद्ध है।

४१– ङञणनमाः स्वस्थाननासिकास्थानाः॥२४॥

ङकारादि पाँचों वर्णों को स्व-स्व स्थान और नासिका स्थान से बोलना चाहिये।

४२– द्वे द्वे वर्णे सन्ध्यक्षराणामारम्भके भवत इति॥२५॥

सन्ध्यक्षर अर्थात् जो ए, ऐ, ओ, औ हैं, इन में दो-दो वर्ण मिले होते हैं। जैसे (अ, आ, से इ, ई) मिलके ए, (अ, आ से ए, ऐ) मिलके ऐ, (अ, आ से उ, ऊ) मिलके ओ, (अ, आ से ओ, औ) मिलके औ हो जाते हैं। जैसे एकार के आदि में अकार का कण्ठ और अन्त में इकार का तालु स्थान है, इसी प्रकार ओकार में प्रथम कण्ठ और दूसरा ओष्ठ स्थान है।

४३– सरेफ ऋवर्णः॥२६॥

जो रेफ के सहित ऋवर्ण है, उसको मूर्द्धा स्थान में बोलना चाहिये॥

॥ इति प्रथमं प्रकरणम् ॥

अथ द्वितीयं प्रकरणम्

अब स्थानों के कहने के पश्चात् दूसरे प्रकरण का आरम्भ करते हैं। इसमें जैसी-जैसी क्रिया से जिस-जिस वर्ण का उच्चारण करना होता है, उस-उस का वर्णन है। परन्तु यहाँ इतना अवश्य समझना है कि सब वर्णों के उच्चारण में जिह्वा मुख्य साधन है, क्योंकि उसके विना किसी वर्ण का उच्चारण कभी नहीं हो सकता।

४४– जिह्व्यतालव्यमूर्द्धन्यदन्त्यानां जिह्वा करणम्॥१॥

जिनका जिह्वामूल, तालु, मूर्द्धा और दन्त स्थान है, उनके उच्चारण में जिह्वा मुख्य साधन है। क्योंकि जिस-जिस वर्ण का जो-जो स्थान कहा है, उस-उस में जिह्वा लगाने ही से उनका ज्यों का त्यों उच्चारण होता है।

यह सामान्य सूत्र है। इसका विशेष विधान आगे कहते हैं-

४५- जिह्वामूलेन जिह्व्यानां तद्येषामभ्यासम्॥२॥

जिन वर्णों का जिह्वामूल अभ्यास अर्थात् उच्चारण स्थान है, उन जिह्वामूलीय वर्णों का जिह्वामूल से स्पर्श करके उच्चारण करना चाहिये।[1]

४६- जिह्वोपाग्रेण मूर्द्धन्यानाम्॥३॥

जिन वर्णों का मूर्द्धा स्थान कहा है, उनका उच्चारण जिह्वा के ऊपरले अग्रभाग से मूर्द्धा को स्पर्श करके करना चाहिये।

४७- जिह्वाग्राधः करणं वा॥४॥

इनके उच्चारण में दूसरा पक्ष यह भी है कि जिह्वाग्र के अधोभाग से मूर्द्धा को स्पर्श करके उच्चारण करना चाहिये।

४८- जिह्वाग्रेण दन्त्यानाम्॥५॥

जिन वर्णों का दन्त स्थान कहा है, उनका उच्चारण जिह्वा के अग्रभाग से दाँतों को स्पर्श करके ही करना चाहिये।

४९- इत्येतदन्तः करणम्॥६॥

इस प्रकार से मुख के भीतर स्थानों में वर्णों की उच्चारणक्रिया जाननी चाहिये।

॥ इति द्वितीयं प्रकरणम् ॥

---

१. इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि जिह्वामूलीय वर्णों का जिह्वामूल उच्चारण साधन उनके लिये है, जिनको उस प्रकार बोलने का अभ्यास होवे।

अथ तृतीयं प्रकरणम्

अब स्थान और करण के कहने के पश्चात् तीसरे प्रकरण का आरम्भ किया जाता है। इसमें आभ्यन्तर प्रयत्नों का वर्णन किया है–

५०– प्रयत्नोऽपि द्विविधः॥१॥

प्रयत्न भी दो प्रकार के होते हैं।

५१– आभ्यन्तरो बाह्यश्च॥२॥

आभ्यन्तर और बाह्य।

५२– आभ्यन्तरस्तावत्॥३॥

इन दोनों में से प्रथम आभ्यन्तर प्रयत्न को कहते हैं।

५३– स्पृष्टकरणाः स्पर्शाः॥४॥

ककार से लेकर मकार पर्यन्त पच्चीस (२५) वर्णों का स्पृष्ट प्रयत्न है। अर्थात् जिह्वा से स्व-स्व स्थानों में स्पर्श करके इन वर्णों का उच्चारण करना शुद्ध है।

५४– ईषत्स्पृष्टकरणा अन्तस्थाः॥५॥

थोड़ा स्पर्श करके अन्तस्थ अर्थात् य, र, ल, व का उच्चारण करना चाहिये।

५५– ईषद्विवृतकरणा ऊष्माणः॥६॥

जिसलिये ऊष्म अर्थात् श, ष, स, ह का अपने-अपने स्थान में जिह्वा का किञ्चित् स्पर्श करके शुद्ध उच्चारण होता है, इसलिये इनका ईषद्विवृत प्रयत्न है।

५६– विवृतकरणा वा॥७॥

और इसमें दूसरा पक्ष यह भी है कि स्व-स्व स्थान को जीभ से स्पर्श के विना भी इनका उच्चारण करना शुद्ध है। इसलिये श, ष, स,

ह का विवृत प्रयत्न भी है।

५७– विवृतकरणाः स्वराः॥८॥

जिसलिये उक्त स्थानों से जीभ को अलग करके स्वरों का उच्चारण करना योग्य है, इसलिये इनका विवृत प्रयत्न है।

५८– संवृतस्त्वकारः॥९॥

अकार का संवृत प्रयत्न है। क्योंकि इसका उच्चारण कण्ठ को संकोच करके होता है। परन्तु इसका [व्याकरण सम्बन्धी] कार्य करने के समय विवृत प्रयत्न ही होता है।

५९– इत्येषोऽन्तः प्रयत्नः॥१०॥

यह आभ्यन्तर प्रयत्नों का प्रकरण पूरा हुआ।

॥ इति तृतीयं प्रकरणम् ॥

अथ चतुर्थं प्रकरणम्

६०– अथ बाह्याः प्रयत्नाः॥१॥

अब इसके आगे चौथे प्रकरण में वर्णों के बाह्यप्रयत्नों का वर्णन करते हैं–

६१– वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः शषसविसर्जनीयजिह्वामूलीयोपध्मानीया यमौ च प्रथमद्वितीयौ विवृतकण्ठाः श्वासाऽनुप्रदानाश्चाऽघोषाः॥२॥

यहाँ वर्ग शब्द से कु, चु, टु, तु, पु इन पाँचों का ग्रहण है। इनके दो-दो वर्ण अर्थात् कवर्ग में (क, ख), चवर्ग में (च, छ), टवर्ग में (ट, ठ), तवर्ग में (त, थ), पवर्ग में (प, फ), ऊष्मों में (श, ष, स), और (:) विसर्जनीय, (ᳵ) जिह्वामूलीय, (ᳶ) उपध्मानीय, (ꣳ ꣴ) ये दो यम इन अठारह (१८) वर्णों का (**विवृतकण्ठ**) अर्थात् कण्ठ को फैला

(श्वासानुप्रदान) उच्चारण के पश्चात् श्वास को युक्त कर और **(अघोष)** सूक्ष्म ध्वनि की योजनारूप क्रिया करके इनका उच्चारण करना चाहिये।

६२– एके अल्पप्राणा इतरे महाप्राणाः॥३॥

पाँचों वर्गों के प्रथम तृतीय और पञ्चम अर्थात् (क, ग, ङ, च, ज, ञ, ट, ड, ण, त, द, न, प, ब, म) य, र, ल, व, यम प्रथम तृतीय अर्थात् (ύं ँ) इतने सब 'अल्पप्राण' अर्थात् ये थोड़े, और (ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ, श, ष, स, ह, ः, (⌣),(ं), (ः), (ळ), और अकारादि स्वर ये सब 'महाप्राण' अर्थात् अधिक बल से बोले जाते हैं।

६३– वर्गाणां तृतीयचतुर्था अन्तस्था हकारानुस्वारौ यमौ च तृतीयचतुर्थौ नासिक्याश्च संवृतकण्ठा नादानुप्रदाना घोषवन्तश्च॥४॥

पाँचों वर्गों के तीसरे और चौथे वर्ण अर्थात् (ग, घ, ज, झ, ड, ढ, द, ध, ब, भ), अन्तस्थ अर्थात् (य, र, ल, व), ह, (ं) अनुस्वार, और तीसरे चौथे यम अर्थात् (ँ ळ) सानुनासिक अकारादि स्वर इनका (संवृतकण्ठ) प्रयत्न अर्थात् कण्ठ का संकोच, (नादानुप्रदानाः) इनके उच्चारण में अव्यक्त ध्वनि, और (घोषवन्तः) इनका उच्चारण गम्भीर शब्द से करना चाहिये।

६४– यथा तृतीयास्तथा पञ्चमाः॥५॥

वर्गों के तृतीय वर्णों के समान पञ्चम वर्ण अर्थात् (ङ, ञ, ण, न, म) के **(संवृतकण्ठ)**, **(नादानुप्रदान)** और **(घोष)** प्रयत्न समझने चाहियें।

६५– आनुनासिक्यमेषामधिको गुणः॥६॥

पूर्वोक्त ङ, ञ, ण, न, म को मुख से बोले। पश्चात् नासिका से बोलना ही इनका आनुनासिक्य गुण अधिक है।

६६– शादय ऊष्माण:॥७॥

शादि अर्थात् (श, ष, स, ह) की 'ऊष्म' संज्ञा, और ये महाप्राण प्रयत्न से बोले जाते हैं।

६७– सस्थानेन द्वितीया:॥८॥

जो पाँचों वर्गों के दूसरे वर्ण अर्थात् (ख, छ, ठ, थ, फ) हैं, वे सकार के समान महाप्राण प्रयत्न से बोलने चाहियें।

६८– हकारेण चतुर्था:॥९॥

वर्गों के चतुर्थ अर्थात् (घ, झ, ढ, ध, भ) इन पाँचों वर्णों का हकार के समान महाप्राण प्रयत्न होता है।

॥ इति चतुर्थं प्रकरणम् ॥

अथ पञ्चमं प्रकरणम्

६९– तत्र स्पर्शयमवर्णकरो वायुरय:पिण्डवत् स्थानमभिपीडयति। अन्तस्थवर्णकरो वायुर्दारुपिण्डवद्। ऊष्मस्वरवर्णकरो वायुरूर्णापिण्ड वद्। उक्ता: स्थानकरणप्रयत्ना:॥१॥

सब मनुष्यों को उचित है कि जो (स्पर्श) ककार से लेके म पर्यन्त (२५) वर्ण और चार यम हैं, इनको प्रकट करने वाले वायु को लोहे के गोले के समान स्थान में लगाके, अन्तस्थ वर्णों के बोलने में वायु को काष्ठ के गोले के समान स्थान में लगाके, और शादि तथा बाईस (२२) स्वरों के उच्चारण में वायु को ऊन के गोले के समान स्थान में लगाके बोला करें। इस प्रकार जो स्थान करण और प्रयत्न कह चुके हैं, उनका ज्ञान अवश्य करें।।

॥ इति पञ्चमं प्रकरणम् ॥

अथ षष्ठं प्रकरणम्

७०– अवर्णो ह्रस्वदीर्घप्लुतत्वाच्च त्रैस्वर्योपनयेन चानुनासिक्यभेदाच्च संख्यातोऽष्टादशात्मकः। एवमिवर्णादयः॥१॥

अब अकारादि वर्णों के भेद दिखाते हैं– अकार के उदात्त अनुदात्त और स्वरित भेद हैं। और जब इन एक-एक के साथ ह्रस्व उदात्त, ह्रस्व अनुदात्त, ह्रस्व स्वरित, और इसी प्रकार दीर्घ और प्लुत के साथ लगाते हैं, तब अकार के नव भेद हो जाते हैं। और जब ये सानुनासिक्य भेदयुक्त होते हैं, तब इन नव-नव के अठारह-अठारह भेद होते हैं। इसी प्रकार इकारादि स्वरों में प्रत्येक के अठारह-अठारह भेद समझने चाहियें। परन्तु–

७१– ऌवर्णस्य दीर्घा न सन्ति॥२॥

जिसलिये ऌकार के दीर्घ-भेद नहीं होते।

७२– तं द्वादशप्रभेदमाचक्षते॥३॥

इसलिये ऌकार को बारह (१२) भेद से युक्त कहते हैं।

७३– यदृच्छाशब्दे अशक्तिजानुकरणे वा यदा दीर्घाः स्युस्तदाऽष्टादशप्रभेदं ब्रुवते क्लृपक इति॥४॥

जिन लोगों के मत में यदृच्छा शब्द होते हैं, अथवा जब उनका अशक्तिज के अनुकरण में प्रयोग करते हैं, तब ऌकार को दीर्घ मानके उसके भी अठारह (१८) भेद कहते हैं। क्लृपक के इस प्रयोग में होते हैं।

७४– सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वा न सन्ति। तान्यपि द्वादशप्रभेदानि॥५॥

जिसलिये सन्ध्यक्षर अर्थात् (ए,ऐ, ओ, औ) इनके ह्रस्व नहीं होते, इसलिये इनके भी बारह-बारह भेद होते हैं।

७५– अन्तस्था द्विप्रभेदा रेफवर्जिताः सानुनासिका निरनुनासिकाश्च॥६॥

और (र) को छोड़कर अन्तस्थ अर्थात् (य, ल, व) ये तीन सानुनासिक यँ, लँ, वँ और निरनुनासिक य, ल, व, भेद से दो प्रकार के होते हैं।

७६– रेफोष्मणां सवर्णा न सन्ति॥७॥

जिसलिये (र), और ऊष्म अर्थात् (श, ष, स, ह) का कोई सवर्णी नहीं होता, इसलिये इनके परे किसी वर्ण के स्थान में इनका सवर्णी आदेश नहीं होता।

७७– वर्ग्यो वर्ग्येण सवर्णः॥८॥

परन्तु कु, चु, टु, तु, पु इन पाँच वर्ग, और य, ल, व इन तीनों की परस्पर सवर्ण संज्ञा मानी जाती है। जैसे ककार का सवर्णी खकार समझा जाता है, वैसे समझना चाहिये॥

॥ इति षष्ठं प्रकरणम् ॥

अथ सप्तमं प्रकरणम्

७८– इत्येष क्रमो वर्णानाम्॥१॥

यह पूर्व अकारादि वर्णों का क्रम कहके–

७९– तत्रैते कौशिकीयाः श्लोकाः॥२॥

षष्ठ प्रकरण के विषय में कौशिक ऋषि के ये श्लोक हैं। उनमें से आगे कुछ विशेष विषयक श्लोक लिखते हैं–

८०– सर्वान्तेऽयोगवाहत्वाद्विसर्गादिरिहाष्टकः।
अकार उच्चारणार्थो व्यञ्जनेष्वनुबध्यते॥३॥

विना संयोग के प्राप्त होने से यहाँ सब वर्णमाला के अन्त में विसर्ग आदि अष्टक (विसर्जनीय, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, अनुस्वार, चार यम) गिना जाता है, और अलग इसकी प्राप्ति होती है। इससे विसर्गादि अष्टक

'अयोगवाह' कहाता, और वर्णमाला के वर्णों से अलग गिना जाता है। वर्णमाला के व्यञ्जनों में एक अकार अनुबन्ध किया है, वह उच्चारणमात्र के लिये है कि जिससे व्यञ्जन का स्पष्ट उच्चारण हो।

८१– ≍क≍पयोः कपकारौ च तद्वर्गीयाश्रयत्वतः।
पलिक्क्नी चख्ख्नतुर्जग्गिमर्जघ्घ्नुरित्यत्र यद्वपुः॥
नासिक्येनोक्तं कादीनां त इमेऽयमाः।
तेषामुकारः संस्थानवर्गीयलक्षकः॥

≍ जिह्वामूलीय और ≍ उपध्मानीय के साथ में जो ककार और पकार हैं, वे तद्वर्गीयाश्रयत्व से हैं, अर्थात् उनका कवर्ग और पवर्ग के परे विधान है। इससे उनके साथ में ककार और पकार हैं। पलिक्क्नी आदि प्रयोगों में जो (क्, ख्, ग्, घ्) इत्याकारक अंश नासिकास्थानीय (न्, न्, म्, न्) वर्णों से अप्रकटित अर्थात् गृहीत नहीं होता है, वह अयम अर्थात् यम नहीं। और ककारादि वर्णों का जो उकार आता है, वह संस्थानीय वर्ण अर्थात् उन वर्गों के सजातीय वर्णों का लक्षक है। जैसे (कु, चु, टु, तु, पु) इनमें प्रत्येक वर्ण के उकार के संयोग से वर्गमात्र का बोध होता है॥

॥ इति सप्तमं प्रकरणम् ॥

अथाष्टमं प्रकरणम्

८२– उक्ताः स्थानकरणप्रयत्नाः॥१॥

अब सब वर्णों के स्थान करण और प्रयत्नों को कह चुके हैं। अगले प्रकरण में स्थान आदि के लक्षण कहते हैं।

८३– यत्रस्था वर्णा उपलभ्यन्ते तत्स्थानम्॥२॥

'स्थान' उसको कहते हैं कि जहाँ से प्रसिद्ध होकर वर्ण सुनने में आते हैं।

८४– येन निर्वृत्यते तत्करणम्।।३।।

स्थानों में जीभ और प्राण के जिस संयोग से वर्णों का उच्चारण करना होता है, उसको 'करण' कहते हैं।

८५– प्रयतनं प्रयत्नः।।४।।

जो वर्णों के उच्चारण में पुरुषार्थ से यथावत् क्रिया करनी होती है, वह 'प्रयत्न' कहाता है।

८६– नाभिप्रदेशात्प्रयत्नप्रेरितः प्राणो नाम वायुरूर्ध्वमाक्रामन्नुरआदीनां स्थानानामन्यतमस्मिन् स्थाने प्रयत्नेन विचार्यते।।५।।

जो ऊपर को श्वास निकलता है, उसको प्राण कहते हैं। जो आत्मा के उच्चारण की इच्छा से विचारपूर्वक नाभि देश से प्रेरणा किया प्राणवायु ऊपर को उठता हुआ कण्ठ आदि स्थानों में से किसी स्थान में उत्तम यत्न के साथ विचारा जाता है, अर्थात् अकारादि वर्णों के पृथक्- पृथक् उच्चारण में वायु के संयोग से विचारपूर्वक यथायोग्य क्रिया करनी चाहिये।

सब मनुष्यों को उचित है कि जिस-जिस प्रकरण में जिस वर्ण के उच्चारण के लिये जो-जो बात लिखी है, उसको ठीक-ठीक जानकर विद्यार्थियों को जनाके शब्दाक्षरों के प्रयोग ज्यों के त्यों कर प्रशंसित हो सदा आनन्द से युक्त रह, और सब विद्यार्थियों को भी वर्णोच्चारण शुद्ध कराकर आनन्द में रक्खें।।

।।इत्यष्टमं प्रकरणम्।।

ऋतुरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे माघमासे सिते दले।
चतुर्थ्यां शनिवारेऽयं ग्रन्थः पूर्त्तिं समागतः।।

इति श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीप्रणीतव्याख्यासहिता
पाणिनीयशिक्षासूत्रसंग्रहान्विता वर्णोच्चारण-शिक्षा समाप्ता।।

रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा

प्रकाशित व्याकरण-ग्रन्थ

१. **शिक्षासूत्राणि**– आपिशल–पाणिनीय–चान्द्र–शिक्षा–सूत्र। १०.००

२. **शिक्षामहाभाष्यम्**–(संस्कृत)– जगदीशाचार्य। १५.००

३. **वृद्धशिक्षाशास्त्रम्**–(संस्कृत)– जगदीशाचार्य। ३०.००

४. **वर्णोच्चारण शिक्षा चिन्तनम्**– आचार्य धर्मवीर। २०.००

५. **अष्टाध्यायीसूत्रपाठः**–(मूल)। १२.००

६. **अष्टाध्यायीभाष्य**–(संस्कृत–हिन्दी)– श्री पं॰ ब्रह्मदत्त जिज्ञासु कृत। इसके संस्कृत भाग में प्रत्येक सूत्र का पदच्छेद, विभक्ति, समास और आने वाली अनुवृत्ति का निर्देश करके सरल संस्कृत में सूत्र की वृत्ति और उदाहरण दिये हैं। प्रत्येक भाग के अन्त में उदाहरणों की सिद्धि की प्रक्रिया दर्शाई है।

प्रथमभाग– १५०.००, द्वितीयभाग– ८०.००, तृतीयभाग– १००.००

७. **धातुपाठः**–(धातुसूचीसहित)। १०.००

८. **माधवीय-धातुवृत्ति**– सम्पादक– डॉ॰ विजयपाल विद्यावारिधि। ५००.००

९. **पारिभाषिकः**–(संस्कृत)– व्याख्याकार– आचार्य प्रद्युम्न। ६०.००

१०. **काशिका**–(मूलमात्र)– वामनजयादित्यविरचित । सम्पादक– डॉ॰ विजयपाल विद्यावारिधि। ५००.००

पुस्तक-प्राप्ति-स्थान-

१. रामलाल कपूर ट्रस्ट, ग्राम रेवली, पो॰ शाहपुरतुर्क, जि॰ सोनीपत- १३१००१(हरियाणा)। २. रामलाल कपूर एण्ड संस, पेपर मर्चेन्ट्स, २५९६, नई सड़क, दिल्ली।